International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 13 Issue 2, Mar.-Apr,, 2025

योगवासिष्ठ में मनस तत्व

निशा[1], डॉ रमेश कुमार[2]

[1]शोध छात्र, योग विज्ञानं विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
[2]सहायक आचार्य, योग विज्ञानं विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध सार

यह शोधपत्र योगवासिष्ठ में प्रतिपादित मनस तत्त्व की दार्शनिक और आध्यात्मिक विवेचना पर केन्द्रित है। योगवासिष्ठ भारतीय अद्वैत वेदान्त परम्परा का एक विलक्षण ग्रन्थ है, जिसमें मन, आत्मा, माया और मोक्ष जैसे गूढ़ विषयों को ऋषि वसिष्ठ और श्रीराम के संवाद के माध्यम से अत्यन्त सूक्ष्मता और गहराई से प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ में मन को न केवल मानव अनुभवों का केन्द्र माना गया है, बल्कि इसे समस्त संसार की सृष्टि, अनुभव और बन्धन का मूल कारण भी बताया गया है। वसिष्ठ के अनुसार चित्तमेव हि संसारः यह सूचित करता है कि मन ही संसार है। मन की संकल्प, विकल्प और स्मृति जैसी प्रवृत्तियाँ ही जीव को माया-जाल में बाँधती हैं, और इन्हीं पर नियन्त्रण ही मुक्ति का मार्ग है।

शोधपत्र में इस बात का विश्लेषण किया गया है कि योगवासिष्ठ में मन को किस प्रकार एक उपकरण के रूप में देखा गया है, जो बन्धन का कारण भी है और मोक्ष का साधन भी। यह ग्रन्थ मन के कार्य-कलापों को पहचानकर उसके निराकरण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है। मन का शुद्धिकरण, संकल्परहित स्थिति की प्राप्ति, और आत्मा में उसकी लीनता ये सभी योगवासिष्ठ के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक योगदान को प्रतिपादित करते हैं। इस शोध का उद्देश्य योगवासिष्ठ के मनस तत्त्व को केवल शास्त्रीय सीमाओं तक न रखकर, उसे वर्तमान मानसिक अशान्ति, आत्मविस्मृति और जीवन की व्यग्रता के समाधान के रूप में प्रस्तुत करना है।

यह ग्रन्थ आधुनिक मानव के लिए मानसिक शान्ति, आत्म-साक्षात्कार और जीवनमुक्ति की दिशा में प्रभावी पथप्रदर्शक सिद्ध हो सकता है। अतः यह अध्ययन भारतीय दार्शनिक परम्परा में मन की भूमिका को समझने तथा आधुनिक काल में उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करने का प्रयास करता है।

बीज शब्द - योगवासिष्ठ, मनस तत्त्व, अद्वैत वेदान्त, संकल्प, आत्मबोध, माया, मुक्ति, भारतीय दर्शन, कर्म, उपनिषद्।

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परम्परा में मनस तत्त्व एक अत्यन्त गूढ़ विषय है, जिसका विश्लेषण उपनिषदों से लेकर योगदर्शन, सांख्य दर्शन और अद्वैत वेदान्त तक व्यापक रूप से हुआ है। परन्तु योगवासिष्ठ में यह विषय विशेष गहराई और मौलिकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। योगवासिष्ठ एक वैदिक कालीन ग्रन्थ है जो अद्वैत वेदान्त, योग और मानसिक विज्ञान का अनूठा संगम है। इसमें ऋषि वसिष्ठ द्वारा श्रीराम को आत्मबोध के माध्यम से जीवन, माया, मन, और मोक्ष की व्यापक विवेचना दी गई है।

मन का स्वरूप - योगवासिष्ठ में मन को एक शक्तिशाली, लेकिन मिथ्या तत्व के रूप में देखा गया है। इस जगत् की उत्पत्ति मन के संकल्प से हुई है अर्थात् इस जगत की उत्पत्ति का कारण मन की संकल्प शक्ति है। संकल्प ही मन है जैसे हम जब किसी कार्य को करते हैं, तो उसमें संकल्प का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना संकल्प शक्ति के कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। हम छोटी सी बात से ही इसे इस प्रकार समझ सकते हैं, कि जैसे हम प्रतिदिन सुबह जल्दी उठाना चाहते हैं तो उसके लिए प्रतिदिन उठने में यह संकल्प शक्ति काम आती है। जिस दिन भी हम इस संकल्प शक्ति को याद नहीं रखेंगे या इस संकल्प शक्ति के अनुसार निर्णय नहीं लेंगे, तो उस दिन हम जल्दी नहीं उठ पाएंगे। हमारा यह मन न केवल जगत की उत्पत्ति का आधार है, बल्कि प्राणों को शरीर में प्रवेश करवाने का आधार भी मन ही है।[1]

योगवासिष्ठ के अनुसार मन की परिभाषा

चित्तमेव हि संसारः तेन त्यक्तं भवेच्छिवः।[2]

अर्थात् समस्त संसार का अनुभव, उसका अस्तित्त्व और बन्धन, सब मन के ही कारण है। जब चित्त की चेष्टाएं समाप्त हो जाती है तब संसार भी नष्ट हो जाता है। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि चित्त, यानी मन ही संसार है। जब चित्त की वासनाएं शान्त हो जाती हैं, तभी मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस दृष्टिकोण से मन स्वयं में कोई वस्तु नहीं, अपितु वासनाओं और विकल्पों की एक तरंगमालिका है।

मन का अस्तित्व वस्तुतः उसके संकल्प-विकल्प में ही निहित है। जब ये संकल्प समाप्त हो जाते हैं, तो मन भी समाप्त प्रतीत होता है। इसीलिए वसिष्ठ कहते हैं कि मन की सत्ता केवल उसकी क्रियाशीलता में है, जो इच्छाओं, कल्पनाओं और स्मृतियों के माध्यम से प्रकट होती है। महर्षिवासिष्ठ श्री राम को कहते हैं कि ब्रह्म के द्वारा रचित जो संकल्पमय रूप है, वही विद्वानों के द्वारा मन समझा जाता है। यह जो मन है यह संकल्प शक्ति से विद्यमान है। जिस प्रकार एक गुणी व्यक्ति गुण से रहित नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार मन भी संकल्प अथवा कल्पना शक्ति

[1] प्रश्नोपनिषद्, तृतीय प्रश्न, 3

[2] योगवासिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण, 2.11.5

से रहित हो ही नहीं सकता। क्योंकि गुणी व्यक्ति का आधार गुण होते हैं तथा मन का आधार संकल्प शक्ति होती है।[3] जब मन के सम्पर्क में बहुत सारे विषय आते हैं उसमें से मन जिस भी विषय का अनुसंधान करता है, उसी विषय का कर्मेन्द्रिया तथा ज्ञानेन्द्रिया अनुसरण करती हैं। इन्हीं वजह से मन को कर्म कहा गया है। जिस तरह हम प्रतिदिन योग का अभ्यास करते हुए उसमें षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्राएं, ध्यान आदि क्रिया करते हैं। किन्तु किसी क्रिया जैसे आसन को करने में मन की जिज्ञासा ज्यादा होगी तो इस क्रिया का अनुसरण हमारी कर्मेन्द्रिया तथा ज्ञानेन्द्रिया भी करने लगती हैं।

मनोयदनुसंधत्तेतत्कर्मेंद्रियवृत्तयः।
सर्वाःसम्पादयंत्येतास्तस्मात्कर्ममनःस्मृतम्।।[4]

किसी भी कर्म का सम्पादन कर्मेन्द्रिया व ज्ञानेन्द्रिया द्वारा होता है। जिस भी कार्य में हमारी ज्ञानेन्द्रिया में जानने की संलिप्तता होती है, उन्हें कर्म कहा जाता है। इनका आधार मन ही है, इसीलिए कर्म को मन कहा गया है। हमारे द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक कर्म नहीं बनता,जब तक उसमें मन की उपस्थिति नहीं होती है। वह कार्य रहेगा, कर्म नहीं बनेगा। जिस प्रकार हम अपनी जिंदगी में विभिन्न प्रकार के रूप धारण करते हैं। उसी तरह मन भी अलग-अलग कर्मों का सहारा लेकर बहुत सारे नाम धारण करता है। हम जो भी अलग-अलग रूप देखते हैं उनका कारण प्रकाश है, उसी प्रकार अलग-अलग विषयों के अनुभव में मन ही कारण है। जिस भी मनुष्य का चित्त विषयों से बंधा रहता है, वह मनुष्य हमेशा बन्धन में पड़ता है तथा जिसका चित्त बन्धन से रहित रहता है वह मनुष्य मुक्त हो जाता है।

योगवासिष्ठ में मन की तीन प्रमुख शक्तियाँ बताई गई हैं। जो क्रमशः है संकल्प - इच्छा या चाह की उत्पत्ति, विकल्प - अनेक विकल्पों में चयन की प्रक्रिया, स्मृति - पूर्व अनुभवों का पुनरावर्तन। ये तीनों मिलकर मन की गतिशीलता को बनाते हैं। वसिष्ठ समझाते हैं कि जब तक संकल्प और विकल्प की प्रवृत्ति बनी रहेगी, तब तक मन की चञ्चलता बनी रहेगी। स्मृति इस चक्र को और बल देती है, क्योंकि यह मन को बार-बार अतीत में ले जाकर वासनाओं को पुनः जागृत करती है। इसलिए साधक के लिए आवश्यक है कि वह इन तीनों पर नियन्त्रण प्राप्त करे। जब संकल्परहित स्थिति आती है, तब मन समाधि की ओर अग्रसर होता है। मन और माया का सम्बन्ध भी योगवासिष्ठ में बड़े विस्तार से बताया गया है। माया को त्रिगुणात्मक और भ्रमजनक शक्ति माना गया है, जो ब्रह्म की निराकार सत्ता को रूपात्मक बना देती है। मन इस माया का उपकरण बनकर जीव को माया-जाल में फँसाता है।

[3] योगवासिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण,सर्ग 96.3

[4] योगवासिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग 96.12

मन की उत्पत्ति - विचार रूपी सृष्टि योगवासिष्ठ की एक प्रमुख अवधारणा है कि यह सम्पूर्ण जगत "मन" की उपज है। वस्तुतः मन ही जगत को रचता है, अनुभव करता है और उससे बन्धता भी है।

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्चषोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥[5]

सांख्यकारिका के अन्तर्गत मन की उत्पत्ति को समझने के लिए सर्वप्रथम सृष्टि की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार 25 तत्वों को समझना जरूरी है जो इस प्रकार है आरम्भ में पुरुष और प्रकृति, प्रकृति से महत् (बुद्धि) की उत्पत्ति, महत् से अहंकार की उत्पत्ति, अहंकार के तीन गुणों में सत्वगुण से एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। जो इस प्रकार है - पांच ज्ञानेन्द्रिय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध) पांच कर्मेन्द्रियां (वाक्, पाणि, पाद, पायु व उपस्थ) तथा एक मन, अहंकार के राजसिक गुण से किसी की उत्पत्ति नहीं तथा तमोगुण से पांच तन्मात्राएं और पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूतों की उत्पत्ति। इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। मन की उत्पत्ति अहंकार के सत्व गुण से हुई है।

मन ही द्वैत का मूल है - वह स्वयं को शरीर मानता है, और फिर दूसरों को 'अन्य' समझता है। इसी भेदबुद्धि से राग-द्वेष, सुख-दुःख, कर्म और बन्धन जन्म लेते हैं।

उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात्।
गुण परिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च।।[6]

पांच ज्ञानेन्द्रियों व पांच कर्मेन्द्रियों व एक मन इन दस इन्द्रियों के साथ मन को मनुष्य की ग्यारहवीं इन्द्री माना गया हैं। मन एक उभयात्मक इन्द्री हैं। ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों के सम्पर्क में आने के साथ कार्य करने से मन उभयात्मक इन्द्री हुआ। ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन ज्ञानेन्द्रियों की तरह व कर्मेन्द्रियों के साथ कर्मेन्द्रियों की तरह कार्य करता हैं। मन के बिना ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का कार्य सम्भव नहीं है। मन संकल्प वृत्ति वाला बताया गया है। संकल्प को ही मन का व्यापार बताया गया है। सांख्यकारिका के अनुसार मन को अन्तःकरण का अंग बताया गया। जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि व अहंकार है।

मन का नियन्त्रण - योगवासिष्ठ में मन को वश में करने के दो प्रमुख उपाय बताए गए हैं - विवेक और ध्यान। विवेक के माध्यम से साधक यह समझता है कि "मैं" शरीर, मन, बुद्धि नहीं हूँ, बल्कि शुद्ध चैतन्य हूँ। यह आत्मबोध मन की चञ्चलता को शान्ति में बदलता है।

[5] सांख्यकारिका, 22
[6] सांख्यकारिका, 27

ध्यान के माध्यम से मन को एकाग्र किया जाता है, ताकि वह अपने मूल स्रोत चैतन्य में लीन हो सके। ध्यान की अवस्था में मन की गतिविधियाँ शान्त होती हैं, और अंततः वह 'मन-शून्य' अवस्था को प्राप्त करता है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवतगीता में भी मन को वश में करने के दो उपाय बताए गए हैं- अभ्यास और वैराग्य।[7]

वसिष्ठ कहते हैं-

मनो न मेति निष्कामः स शान्तो मुक्त उच्यते।
जो व्यक्ति मन को निष्काम बना देता है, वही वास्तव में शान्त और मुक्त कहा जाता है।

मन का अन्तिम उद्देश्य है, आत्मा के स्वरूप को जानना और उसमें स्थित हो जाना। जब मन आत्मा में लीन हो जाता है, तब वह मन नहीं रह जाता, वह चैतन्य का ही प्रतिबिम्ब बन जाता है।

इस अवस्था को 'मनोनाश' कहा गया है, परन्तु यह कोई हिंसात्मक प्रक्रिया नहीं है। यह एक सहज प्रक्रिया है, जहाँ साधक धीरे-धीरे संकल्प, विकल्प, वासना और अहंकार से मुक्त होता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं समृतम्।।[8]

जब मन आत्मा में लीन होता है, तब वही परम पद बन जाता है। यह कथन दर्शाता है कि मन को नकारना नहीं, अपितु शुद्ध करना आवश्यक है। आधुनिक मनोविज्ञान जहाँ व्यवहार और अनुभूतियों को आधार मानकर मन को समझने का प्रयास करता है, वहीं योगवासिष्ठ मन के पार जाने की बात करता है, उस शुद्ध सत्ता तक जो मन से परे है। मन की मुक्ति को लेकर योगवासिष्ठ का अन्तिम उद्देश्य है, जीव को आत्मसाक्षात्कार द्वारा जीवनमुक्ति की ओर ले जाना। मन जब शुद्ध, संकल्परहित और शान्त हो जाता है, तब वह आत्मा का दर्पण बनता है।

ऐसी स्थिति में जीव संसार में रहते हुए भी मोक्ष का अनुभव करता है। बल्कि वही जीवनमुक्ति की स्थिति है जहाँ न कोई बन्धन है, न कोई लालसा। वहाँ केवल चैतन्य का अविचल आनन्द है। मन की मुक्ति ही आत्मा की मुक्ति है, क्योंकि दोनों में भिन्नता केवल भ्रम के कारण प्रतीत होती है।

[7] श्रीमद्भगवद्गीता, 6/35
[8] मैत्रायणीय उपनिषद्, 6.34.11

निष्कर्ष

योगवासिष्ठ में मनस तत्त्व की विवेचना एक अद्वितीय आध्यात्मिक मनोविज्ञान है, जिसमें मन की उत्पत्ति, उसकी प्रकृति, शक्तियाँ, बन्धन और मुक्ति सभी पहलुओं को विस्तार से समझाया गया है। मन न तो पूर्णतः नकारा गया है, न ही पूजा गया है। उसे एक उपकरण की भाँति देखा गया है, जो जब वश में हो, तो मोक्ष का साधन बन जाता है और वश में न होने पर बन्धन का कारण बनता है। इस दृष्टिकोण से योगवासिष्ठ न केवल एक दार्शनिक ग्रन्थ है, बल्कि मनोविज्ञान, ध्यान और आत्मबोध का एक जीवंत प्रकाशस्तंभ भी है। आधुनिक युग में जहाँ मन की व्याकुलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, वहाँ योगवासिष्ठ की शिक्षाएँ हमें भीतर की शान्ति और मुक्ति का मार्ग दिखाती हैं।

सन्दर्भ सूची

[1]. महर्षि वाल्मीकि, योगवासिष्ठ (महाग्रन्थ), चौखम्बा संस्कृत सीरीज कार्यालय, वाराणसी, संस्करण 2021.
[2]. स्वामी सत्यानन्द, योगवासिष्ठ सार (लघु योगवासिष्ठ), बिहार स्कुल ऑफ़ योग, मुंगेर, संस्करण 2001.
[3]. स्वामी तेजोमयानन्द, योगवासिष्ठ (लघु योगवासिष्ठ), चिन्मय मिशन, मुंबई, संस्करण 2015.
[4]. द्विवेदी, पं० ठाकुरप्रसाद, योगवासिष्ठ महारामायणम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान (दिल्ली) 2010
[5]. दशोरा, नन्दलाल, योगवाशिष्ठ महारामायण, रणधीर प्रकाशन (हरिद्वार)2016
[6]. योगवासिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर
[7]. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010
[8]. शास्त्री, आचार्य जगन्नाथ, सांख्यकारिका, मोतीलाल बनारसी दास
[9]. स्वामी रामदेव, श्रीमद्भगवत गीता गीताअमृत,पतंजलि योगपीठ (हरिद्वार) 2016